6672

सितम्बर १९८३
वर्ष ७ : अंक ५

तित्थयर

ी
सूरि
र,
नगर

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON   Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ७ : अंक ५
सितम्बर १९८३

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

विश्वविद्यालयों द्वारा
उपेक्षित जैन साहित्य १३३
इसे कहते हैं क्षमा ! १३९
महापंडित टोडरमल १४१
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १४९
वर्धमान जीवन कोश १५९
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १६०

आदिनाथ चौबीसी, भागलपुर

विश्वविद्यालयों द्वारा उपेक्षित जैन साहित्य

डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल

ब्राह्मण एवं बौद्ध संस्कृति के समान जैन संस्कृति भी भारतीय समाज का अभिन्न अंग रही है। भगवान महावीर एवं उनके पूर्व होने वाले सभी २३ तीर्थंकरों ने इसी देश में जन्म लेकर यहाँ की धरा को पावन किया एवं प्राणीमात्र के हित के लिए बोल-चाल की भाषा को अपनाकर जन समान्य तक अपना सन्देश पहुँचाया और देश के इतिहास में एक जीवन्त आदर्श उपस्थित किया।

महावीर के युग में अर्द्ध-मागधी भाषा बोलचाल की भाषा थी। इसीलिए उनके पश्चात् होने वाले सभी आचार्यों, महाकवियों, सन्तों एवं लेखकों ने उसी परम्परा का अनुसरण किया और देश की सभी भाषाओं में जिनमें प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती एवं राजस्थानी सम्मिलित हैं, अपार साहित्य का निर्माण किया। राजस्थान के जैन संग्रहालय इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। यहाँ आज भी तीन लाख पाण्डुलिपियाँ संग्रहित हैं और भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रसिद्ध हैं। गत २५०० वर्षों में देश में न जाने कितने उतार-चढ़ाव आये लेकिन जैन आचार्यों ने नव साहित्य के निर्माण एवं सुरक्षा में जो प्रशंसनीय कार्य किया उससे भारतीय इतिहास सदा गौरवान्वित रहेगा।

इन जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त सैकड़ों प्रबन्ध काव्य, चरित काव्य, फागु काव्य, रास काव्य, नाटक, छंद, अलंकार, ज्योतिष आदि विषयों पर सैकड़ों-हजारों कृतियाँ लिखकर अपने उत्तरदायित्व का पालन किया और देश में सत् साहित्य के प्रचार में सर्वाधिक योग दिया। लेकिन भारतीय विद्वत् समाज अभी तक उनका उचित मूल्यांकन नहीं कर सका। यद्यपि इसके और भी कारण हो सकते हैं लेकिन सबसे अधिक खटकने वाली बात उनकी इस साहित्य की ओर उदासीनता है। प्राकृत भाषा जो अपनी कोमलता के लिए प्रसिद्ध है, ८० प्रतिशत साहित्य जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध है। सारा जैन आगम साहित्य एवं आगमेतर साहित्य की विशाल कृतियों के अतिरिक्त महाकवि विमलसूरि का पउमचरिउ एवं उद्योतन सूरि की कुवलयमाला जैसे शीर्षस्थ ग्रन्थ जिस भाषा में मिलते हों उसकी महानता का जितना गुणानुवाद किया जाये वह थोड़ा रहेगा। इसी तरह अपभ्रंश भाषा का तो सम्पूर्ण साहित्य ही जैन विद्वानों द्वारा निबद्ध है और स्वयंभू

पुष्पदन्त, वीर, नयनंदि एवं रइधू जैसे जगमगाते कवि भारतीय साहित्य के रत्न हैं। स्वयंभू एवं पुष्पदन्त तो दक्षिण भारत के निवासी थे लेकिन उन्होंने उत्तर भारत की जनभाषा अपभ्रंश में पउम चरिउ एवं महापुराण जैसे महाकाव्य लिखकर भारतीय साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा दिए। पउम चरिउ जैसा महाकाव्य किसी भी भाषा में कभी-कभी ही लिखा जाता है तथा भारतीय साहित्य में तो ऐसे महाकाव्य बहुत कम लिखे गए हैं। यह वही महाकाव्य है जिसको राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है।

प्राकृत एवं अपभ्रंश के समान संस्कृत में भी जैनाचार्य काव्य निर्माण करने में कभी पीछे नहीं रहे। उन्होंने जब देखा कि संस्कृत में बिना लिखे काम नहीं चल सकता और वे विद्वानों की कोटि में नहीं आ सकते तो फिर उन्होंने अपना सारा जीवन संस्कृत में ही लिखने में लगा दिया। काव्य, कथा, नाटक एवं चम्पू सभी विषयों पर जैनाचार्यों ने अपार साहित्य लिखा। पुराण एवं दर्शन का अधिकांश साहित्य तो इसी भाषा में मिलता है। उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंक, हरिभद्र, जिनसेन, गुणभद्र, हेमचंद्र जैसे उद्भट् विद्वानों का सहज में होना संभव नहीं है। वास्तव में संस्कृत में भी जैन सन्तों ने जितनी काव्य रचनाएँ की हैं वे सभी दृष्टियों से संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित करने वाली हैं। राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में आज इन आचार्यों की हजारों पाण्डुलिपियाँ संग्रहित हैं।

हिन्दी का आदिकालिक इतिहास तो केवल जैन कवियों की कृतियों का ही इतिहास है। वास्तव में जैन सन्त बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने का स्वप्न तब लिया था जब हिन्दी में रचना निबद्ध करना भी विद्वता से परे समझा जाता था। लेकिन विद्वत समाज के आक्रोश का सामना करते हुए भी उन्होंने जन-साधारण की भाषा को सर्वाधिक महत्व दिया। यही कारण है कि दसवीं शताब्दी से ही वे रासो एवं चौपाई के रूप में रचनाएँ करने लगे और अपनी विभिन्न कृतियों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने लगे। उन्होंने सन् १२९७ में जिणदत्त चौपाई जैसी कृति लिखी और संवत् १४११ में प्रद्युम्न चरित के रूप में ब्रजभाषा का प्रथम महाकाव्य लिखने का गौरव प्राप्त किया और उसे पाठकों को समर्पित किया।

इसके पश्चात् हिन्दी में जितना विशाल साहित्य इन कवियों ने लिखा वह हिन्दी समाज को ही नहीं किन्तु सारे राष्ट्र को गौरवान्वित करने वाला

है। इन कवियों ने काव्य के विभिन्न अंगों के माध्यम से अपनी काव्य-कृतियाँ लिखीं। उन्होंने रास लिखे, चरित काव्य लिखे, फागु लिखे एवं चौपाई लिखी। दोहा एवं षट्पद लिखा। विलास एवं संज्ञक कृतियों में अपनी लघु रचनाओं का संग्रह करके उन्हें लुप्त होने से बचाया। संख्या वाचक कृतियाँ निबद्ध कीं तथा काव्य के जिस अंग अथवा नाम से पाठकों का मन स्वाध्याय की ओर लग सके उन्होंने उसी नाम से काव्य रचना की। जयमाल लिखकर गुणानुवाद किया तथा विशाल पूजा साहित्य लिखकर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। पद साहित्य की दिशा में भी जैन कवि किसी से पीछे नहीं रहे और विभिन्न रागों में आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक पद लिखकर हिन्दी साहित्य की विशालता में और भी वृद्धि की।

पद्य साहित्य ही नहीं गद्य साहित्य के निर्माण मे भी जैन कवि दूरदर्शी रहे और कथा साहित्य, टब्बा साहित्य, टीका साहित्य एवं भाषा साहित्य के माध्यम से प्राकृत एवं संस्कृत की कठिन एवं लोकप्रिय रचनाओं पर हिन्दी में टिकायें लिखकर उन्होंने उनके प्रचार-प्रसार में और भी योगदान दिया। महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने सर्वप्रथम सन् १७२० में ही हिन्दी गद्य में पुण्यास्रव कथाकोष की रचना समाप्त की। इस कृति में छोटी-छोटी कथाओं का संग्रह है। २५० वर्ष पूर्व लिखी गई यह कृति गद्य साहित्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। इसके अतिरिक्त दौलतराम ने पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदिनाथ पुराण जैसी और भी विशालकाय कृतियाँ लिखकर हिन्दी जगत् का महान् उपकार किया। दौलतराम के पहिले और पीछे पचासों ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने अपना समस्त जीवन गद्य साहित्य के निर्माण में ही लगा दिया।

हिन्दी में लिखने वाले प्रमुख कवियों में ब्रह्म जिनदास, भ. रतनकीर्ति, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास पाण्डे, रूपचन्द, भैया भगवतीदास, द्यानतराय, दौलतराम कासलीवाल, भूधर दास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन महा-कवियों की रचनाएँ, भाषा, शैली एवं वर्णन आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं और जिन्हें हिन्दी के किसी भी कवि के समकक्ष उपस्थित किया जा सकता है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश के मानस को सदा ही उन्नत करने का प्रयास किया और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली।

लेकिन यदि आप उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तक से लेकर एम. ए.

कक्षा तक पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों को उठाकर देखेंगे तो हिन्दी के इन कवियों के सम्बन्ध में एक भी पंक्ति पढ़ने को नहीं मिलती और न इन कवियों की रचनाओं में से किसी अंश को पाठ्य पुस्तक में स्थान दिया जाता है। यही नहीं, हिन्दी साहित्य के इतिहास को भी जैन कवियों के साहित्य का मूल्यांकन किए बिना ही विद्यार्थियों के समक्ष रख दिया जाता है। वास्तव में ऐसा इतिहास सही अर्थों में इतिहास की सच्ची कहानी प्रस्तुत करने में असमर्थ तो रहता ही है साथ में वह इतिहास उन कवियों के साथ भी न्याय नहीं करता जिन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दी के विकास में लगाया था। हिन्दी भाषा की पुस्तकों में जब पाठों का संकलन किया जाता है तब कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, रसखान जैसे कुछ महाकवियों की कृतियों को ही इनमें स्थान दिया जाता है। शेष कवियों को एकदम भुला दिया जाता है। चाहे किसी भी स्तर की पाठ्य-पुस्तक हो उसमें भी वे ही कवि आवेंगे जो पहले आ चुके हैं। उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में कवियों के नामों में कोई अन्तर नहीं मिलेगा। यह कैसी विडम्बना है और कैसा हमारा साहित्य प्रेम है? अब तो हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान यह भी शिकायत नहीं कर सकते कि जैन विद्वान द्वारा लिखित साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ है क्योंकि गत २० वर्षों में उसका काफी भाग प्रकाशित होकर हमारे सामने आ चुका है। विश्वविद्यालयों में शोध के नाम पर जो कार्य हो रहा है उसमें जैन कवियों के साहित्य पर बहुत कम कार्य हो रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार गत ३० वर्षों में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में ११७ निबन्ध पी० एच० डी० एवं डि० लिट्० के लिए स्वीकृत हुए हैं तथा वर्तमान में ६६ विषयों पर कार्य हो रहा है

भारत में विश्वविद्यालयों की संख्या और जैनाचार्यों के विशाल साहित्य को देखते हुए यह संख्या तो एकदम नगण्य है। इसके अतिरिक्त यह संख्या किसी एक विभाग की नहीं किन्तु हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, इतिहास एवं संस्कृति आदि विभिन्न विषयों पर होने वाले शोध पर आधारित है।

वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी एवं संस्कृत के, इतिहास एवं पुरातत्व के, गणित एवं अर्थशास्त्र के शीर्षस्थ विद्वानों ने जैनाचार्यों द्वारा लिखे गए साहित्य को देखा ही नहीं। ऐसी स्थिति में मूल्यांकन करने का तो प्रश्न ही

पैदा नहीं होता और जब शीर्षस्थ विद्वानों द्वारा जैन साहित्य को स्वीकृति नहीं मिलेगी तो छोटी श्रेणी के विद्वान अध्यापक का तो उस ओर ध्यान भी कैसे जा सकेगा।

हिन्दी के समान ही संस्कृत की भी यही हालत है। संस्कृत के पाठ्यक्रम में भी वे ही तीन-चार महाकवि घूम फिर कर आते रहते हैं और नये कवियों के पाठों को लेने का किंचित भी प्रयास नहीं किया जाता। हमारी इस साहित्यिक साम्प्रदायिकता में पिसते हैं वे साहित्यकार, जो भारतीय साहित्य के जगमगाते नक्षत्र होने पर भी हम उनकी ओर से हमारी आँखें बन्द कर लेते हैं।

भगवान महावीर का २५०० वाँ परिनिर्वाण वर्ष पर कुछ विश्वविद्यालयों में जैन चेयर खुल भी गई हैं। पर इससे विशाल जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार पर कोई विशेष अन्तर नहीं आया। क्योंकि अभी तक हमारे विद्वानों की जैन साहित्य के प्रति धारणा नहीं बदली है और वे इसे एक सम्प्रदाय विशेष का साहित्य मानकर चलते हैं इसलिए उसे पाठ्यक्रमों में स्थान देने में अब तक वञ्चित रखा गया। यद्यपि डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे कुछ विद्वानों ने जैनाचार्यों द्वारा लिखित साहित्य को साम्प्रदायिक मानकर उसे साहित्य की कोटि से वञ्चित रखने का विरोध किया है। उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का रामचरित मानस भी साहित्यिक क्षेत्र में अविवेच्य हो जावेगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा। केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर यदि हम ग्रंथों को साहित्य सीमा से बाहर निकालने लगेंगे तो हमें आदिकाव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा, तुलसी रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना पड़ेगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मन्तव्य के आधार पर जैन काव्यों का अध्ययन एवं मूल्यांकन किया जाना चाहिए। अधिकांश जैन साहित्य में ६३ शलाका पुरुषों का जीवन चरित निबद्ध है। जिनमें २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलभद्र जैसे महापुरुषों का जीवन भी अत्यधिक श्रद्धा के साथ प्रस्तुत किया

गया है। लेकिन हमारा यह कैसा साहित्यिक प्रेम है कि तुलसी के रामचरित मानस की तो प्रत्येक पंक्ति हमारे लिए पठनीय है जबकि जैन कवि द्वारा निबद्ध राम महाकाव्य पउम चरिउ साहित्यिक क्षेत्र से अविवेच्य समझकर उसके किसी भी भाग को कहीं भी स्थान नहीं दिया जावे। इसी तरह कबीर, मीरा एवं सूरदास के आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक पदों से तो हमारी पाठ्य-पुस्तकें भरी रहें और उसी स्तर के जैन कवि बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय एवं दौलतराम के किसी भी हिन्दी पद को किसी भी स्तर की पाठ्य-पुस्तक में स्थान नहीं मिले। यह कैसा हिन्दी प्रेम है हमारा? हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के समान ही संस्कृत विषय की पाठ्य-पुस्तकों की दशा है। और उनके संकलनों एवं पाठ्य-पुस्तकों में किसी भी जैन कवि की रचना को अब तक स्थान नहीं मिल सका है। जबकि जैनाचार्यों एवं लेखकों ने तथा सामान्य गृहस्थों ने भी अपने ग्रन्थ-भण्डारों में साहित्य की प्रत्येक विधा के ग्रंथों का संकलन एवं उनकी सुरक्षा ही नहीं की है अपितु अपने विद्यार्थियों को उन्हें पढ़ाया भी है। यही कारण है कि आज महाकवि कालिदास, भारवि, माघ जैसे महाकवियों की ही नहीं किन्तु व्याकरण, छन्द, अलंकार, आयुर्वेद, ज्योतिष, पुराण आदि सभी रचनाओं को बड़ी ही श्रद्धा के साथ संकलन किया है। जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में तो संस्कृत काव्यों की जो प्राचीनतम् पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं वे अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियों में भी प्राचीनतम् है। इस प्राप्य सामग्री का विधिवत् अध्ययन करने हेतु विश्व-विद्यालयीन स्तर पर बहुत कुछ किया जा सकता है।

इसे कहते हैं क्षमा !

मुनि चन्द्रप्रभ सागर

विषपूर्ण ज्वालाएँ
एक पर एक
जैसे हो एक ज्वालामुखी
विषधर या विषसागर
ज्वार का उभार
क्रोध का ज्वलंत उदाहरण
चंडकौशिक !

क्रोध से मत्त
हिंसा में रत
रूधिर में मन
प्रकम्पित तन
भयंकर, महाभयंकर
दैत्य-सा
विकराल आकार लिए
तप्त लौह-सा ताप लिए
वह मार रहा
एक पर एक
डंक पर डंक
क्रोधी/गुस्सैला !

एक आश्चर्य घटित हुआ,
एक सत्य प्रकट हुआ,
रक्त पिपासा की प्यास बुझाने हेतु
एक धारा अविरल बही ।
क्या यह रक्त है
नहीं यह दुग्ध है ।
क्षमा का अनुपम स्रोत है ।

आत्म संबल का स्तंभ
करुणा का प्रतिबिम्ब
दया का सागर
अहिंसा का अमर गायक
खड़ा है निर्भय/निश्चल
महावीर !

क्रोध की ज्वाला और क्षमा का दूध
लौह और पारस
चण्डकौशिक और महावीर
किन्तु क्या हुआ
क्रोध के आगे क्षमा का
हिंसा के आगे अहिंसा का
अपूर्व विजय
क्षमा की अद्भुत विजय।

महापंडित टोडरमल

डा० हुकमचन्द भारिल्ल

डा० गौतम के शब्दों में "जैन हिन्दी गद्यकारों में टोडरमलजी का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने टीकाओं और स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में दोनों प्रकार से गद्य-निर्माण का विराट उद्योग किया है। टोडरमल जी की रचनाओं के सूक्ष्मानुशीलन से पता चलता है कि वे अध्यात्म और जैन-धर्म के ही वेत्ता न थे, अपितु व्याकरण, दर्शन, साहित्य और सिद्धान्त के ज्ञाता थे। भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था।"[1]

ईसवा की अठारहवीं सदी के अन्तिम दिनों में राजस्थान का गुलाबी नगर जयपुर जैनियों की काशी बन रहा था। आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी की अगाध विद्वता और प्रतिभा से प्रभावित होकर संपूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में संचालित तत्वगोष्ठियों और आध्यात्मिक मण्डलियों में चर्चित गूढ़तम शंकायें समाधानार्थ जयपुर भेजी जाती थीं और जयपुर से पंडितजी द्वारा समाधान पाकर तत्व जिज्ञासु समाज अपने को कृतार्थ मानता था। साधर्मी भाई ब्र० रायमल ने अपनी 'जीवन पत्रिका' में तत्कालीन जयपुर की धार्मिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

"तहां निरन्तर हजारा पुरुष-स्त्री देवलोक सी भी नांई चैत्याले आय महापुण्य उपारजे, दीर्घकाल का संच्या पाप ताका क्षय करै। सो पचास भाई पूजा करने वारे पाईए, सौ पचास भाषा-शास्त्र बांचने वारे पाईए, दस बीस संस्कृत वांचने वारे पाईए, सौ पचास जनें चरचा करने वारे पाईए और नित्यान का सभा के शास्त्र वांचने का व्याख्यान विषै पाँच से सात से पुरुष तीन से च्यारि से स्त्रीजन, सब मिली हजार बारा से पुरुष स्त्री शास्त्र का श्रवण करै बीस तीस वायां शास्त्राभ्यास करै, देश-देश का प्रश्न इहां आवै तिनका समाधान होय उहां पहुँचे इत्यादि अद्‌भुत महिमा चतुर्थ कालवत् या नग्र विषै जिनधर्म की प्रवर्ति पाईए है।"[2]

---

[1] हिन्दी गद्य का विकास : डा० प्रेम प्रकाश गौतम, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ० १८८।

[2] पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, परिशिष्ट १, प्रकाशक : पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४ बापू नगर, जयपुर ४।

यद्यपि सरस्वती माँ के वरद् पुत्र का जीवन आध्यात्मिक साधनाओं से ओत-प्रोत है तथापि साहित्यिक व सामाजिक क्षेत्र में भी उनका प्रदेय कम नहीं है। आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी उन दार्शनिक साहित्यकारों एवं क्रान्तिकारियों में से हैं जिन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में आई हुई विकृतियों का सार्थक व समर्थ खण्डन ही नहीं किया, वरन् उन्हें जड़ से उखाड़ फेंका। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित साहित्य भाषा ब्रज में दार्शनिक विषयों का विवेचक ऐसा गद्य प्रस्तुत किया जो उनके पूर्व विरल है।

पंडितजी का समय ईसवी की अठारहवीं सदी का मध्यकाल है। वह संक्रान्तिकालीन युग था। उस समय राजनीति में अस्थिरता, सम्प्रदायों में तनाव, साहित्य में शृङ्गार, धर्म के क्षेत्र में रूढ़िवाद, आर्थिक जीवन में विषमता एवं सामाजिक जीवन में आडम्बर—ये सब अपनी चरम सीमा पर थे। उन सबसे पंडितजी को संघर्ष करना था जो उन्होंने डँटकर किया और प्राणों की बाजी लगाकर किया।

पंडित टोडरमलजी गम्भीर प्रकृति के आध्यात्मिक महापुरुष थे। वे स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरभिमानी, विवेकी, अध्ययनशील, प्रतिभावान, बाह्याडम्बर विरोधी, दृढ़ श्रद्धानी, क्रान्तिकारी, सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकने वाले, आत्मानुभवी, लोकप्रिय प्रवचनकार, सिद्धान्त-ग्रन्थों के सफल टीकाकार एवं परोपकारी महामानव थे।

वे विनम्र पर दृढ़ श्रद्धानी विद्वान एवं सरल स्वभावी थे। वे प्रामाणिक महापुरुष थे। तत्कालीन आध्यात्मिक समाज में तत्वज्ञान सम्बन्धी प्रकरणों में उनके कथन प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत किए जाते थे। वे लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। धार्मिक उत्सवों में जनता की अधिक से अधिक उपस्थिति के लिए उनके नाम का प्रयोग आकर्षण के रूप में किया जाता था। गृहस्थ होने पर भी उनकी वृत्ति साधुता की प्रतीक थी।

पंडितजी के पिता का नाम जोगीदास जी एवं माता का नाम रम्भादेवी था। वे जाति से खण्डेलवाल थे। और गोत्र था गोदीका जिसे भौंसा व बड़जात्या भी कहते हैं। उनके वंशज ढोलाका भी कहलाते थे। वे विवाहित थे पर उनकी पत्नी व ससुरालपक्ष वालों का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनके दो पुत्र थे—हरिश्चन्द्र और गुमानीराम। गुमानीराम भी उनके समान उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावक आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। उनके पास बड़े-बड़े विद्वान भी तत्व का रहस्य समझने आते थ। पंडित देवीदास गोधा ने

सिद्धान्तसार संग्रह टीका प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। पंडित टोडरमलजी की मृत्यु के उपरान्त वे पंडितजी द्वारा संचालित धार्मिक क्रान्ति के सूत्रधार रहे। उनके नाम से एक पंथ भी चला जो 'गुमान पंथ' के नाम से जाना जाता है।

पण्डित टोडरमल जी की सामान्य शिक्षा जयपुर की एक आध्यात्मिक (तेरापंथ) शैली में हुई, जिसका बाद में उन्होंने सफल संचालन भी किया। उनके पूर्व बाबा वंशीधर जी उक्त शैली के संचालक थे। पंडित टोडरमल जी गूढ़तत्वों के तो स्वयंबुद्ध ज्ञाता थे। 'लब्धिसार' व 'क्षपणासार' की संदृष्टियाँ आरम्भ करते हुए वे लिखते हैं शास्त्रविषै लिख्या नाहीं और बतावने वाला मिला नाहीं।"

संस्कृत प्राकृत और हिन्दी के अतिरिक्त उन्हें कन्नड़ भाषा का भी ज्ञान था। मूलग्रन्थों को वे कन्नड़ लिपि में पढ़-लिख सकते थे। कन्नड़ भाषा और लिपि का ज्ञान एवं अभ्यास भी उन्होंने स्वयं किया। वे कन्नड़ भाषा के ग्रन्थों पर व्याख्यान करते थे एवं उन्हें कन्नड़ लिपि में लिख भी लेते थे। ब्र० रायमल ने लिखा है—

"दक्षिण देश सूं पाँच सात और ग्रन्थ ताड़पत्रां विषै कर्णाटी लिपि में लिख्या इहां पधारे हैं, ताकूं मलजी बांचे हैं। बाँका यथार्थ व्याख्यान करै है वा कर्णाटी लिपि में लिखै हैं।"

परम्परागत मान्यतानुसार उनकी आयु कुल २७ वर्ष कही जाती रही। परन्तु उनकी साहित्यिक साधना, ज्ञान व प्राप्त उल्लेखों को देखते हुए मेरा यह निश्चित मत है कि वे ४७ वर्ष तक अवश्य जीवित रहे। इस सम्बन्ध में साधर्मी भाई ब्र० रायमल द्वारा लिखित 'चर्चा संग्रह' ग्रन्थ की अलीगंज (एटा, उ० प्र०) में प्राप्त हस्तलिखित प्रति के पृष्ठ १७३ का निम्नलिखित उल्लेख विशेष द्रष्टव्य है—

"बहुरि बारा हज़ार त्रिलोकसारजी की टीका का बारा हजार मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ उनके शास्त्रों के अनुस्वारि अर आत्मानुशासनजी की टीका हजार तीन यां तीनां ग्रन्थां की टीका भी टोडरमलजी सैंतालीस बरस की आयु पूर्ण करि परलोक विषैं गमन कर्यो।"[3]

उनकी मृत्यु तिथि विक्रम संवत् १८२३-२४ के लगभग निश्चित है, अतः उनका जन्म विक्रम संवत् १७७६-७७ में होना चाहिए।

[3] इन्द्र ध्वज विधान महोत्सव पत्रिका।

पंडित बखतराम शाह के अनुसार कुछ मतांध लोगों द्वारा लगाए गए शिवपिण्डी के उखाड़ने के आरोप के संदर्भ में राजा द्वारा सभी श्रावकों को कैद कर लिया गया था और तेरापंथियों के गुरु महान् धर्मात्मा, महापुरुष पंडित टोडरमलजी को मृत्यु दण्ड दिया गया था। दुष्टों के भड़काने में आकर राजा ने उन्हें मात्र प्राणदण्ड ही नहीं दिया बल्कि गंदगी में गड़वा दिया था।[४] यह भी कहा जाता है कि उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचलवा कर मारा गया था।[५]

पण्डित टोडरमलजी आध्यात्मिक साधक थे। उन्होंने जैन दर्शन और सिद्धान्तों का गहन अध्ययन ही नहीं किया अपितु उसे तत्कालीन जन भाषा में लिखा भी है। उसमें उनका मुख्य उद्देश्य अपने दार्शनिक चिन्तन को जन साधारण तक पहुँचाना था। पंडितजी ने प्राचीन जैन ग्रन्थों की विस्तृत, गहन परन्तु सुबोध भाषा टीकाएँ लिखीं। इन भाषा-टीकाओं में कई विषयों पर बहुत ही मौलिक विचार मिलते हैं जो उनके स्वतंत्र चिन्तन के परिणाम थे। बाद में इन्हीं विचारों के आधार पर उन्होंने कतिपय मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की। उनमें से सात तो टीका ग्रन्थ हैं और पाँच मौलिक रचनाएँ। उनकी रचनाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) मौलिक रचनाएँ (२) व्याख्यात्मक रचनाएँ।

मौलिक रचनाएँ गद्य और पद्य दोनों रूपों में है। गद्य रचनाएँ चार शैलियों में मिलती हैं—

(क) वर्णनात्मक शैली (ख) पत्रात्मक शैली (ग) यन्त्र रचनात्मक (चार्ट) शैली (घ) विवेचनात्मक शैली।

वर्णनात्मक शैली में समोसरण आदि का सरल भाषा में सीधा वर्णन है। पंडितजी के पास जिज्ञासु लोग दूर-दूर से अपनी शंकायें भेजते थे। उसके समाधान में वे जो कुछ लिखते थे वह लेखन पत्रात्मक शैली के अन्तर्गत आता है। इसमें तर्क और अनुभूति का सुन्दर समन्वय है। इन पत्रों में एक पत्र बहुत महत्वपूर्ण है। सोलह पृष्ठीय यह पत्र 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यंत्र रचनात्मक शैली में चार्टों द्वारा विषय को स्पष्ट किया है। अर्थ संदृष्टि अधिकार इसी प्रकार की रचना है। विवेचनात्मक शैली में

---

[४] बुद्धि विलास : बखत राम साह, छन्द १३०३, १३०४।

[५] (क) वीरवाणी : टोडरमलांक पृ० २८५, २८६।

(ख) हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड पृ० ५००।

सैद्धांतिक विषयों को प्रश्नोत्तर पद्धति में विस्तृत विवेचन कर के युक्ति व उदाहरणों से स्पष्ट किया है। मोक्ष मार्ग प्रकाशक इसी श्रेणी में आता है।

पद्यात्मक रचनाएँ दो रूपों में उपलब्ध है—

(१) भक्ति परक (२) प्रशस्ति परक।

भक्ति परक रचनाओं में गोम्मटसार पूजा एवं ग्रन्थों के आदि मध्य और अन्त में मंगलाचरण के रूप में प्राप्त फुटकर पद्यात्मक रचनाएँ हैं। ग्रन्थों के अन्त में लिखी गई परिचयात्मक प्रशस्तियाँ प्रशस्ति परक श्रेणी में आती हैं।

पण्डित टोडरमलजी की व्याख्यात्मक टीकाएँ दो रूपों में पाई जाती हैं—

(१) संस्कृत ग्रन्थों की टीकाएँ

(२) प्राकृत ग्रन्थों की टीकाए

संस्कृत ग्रन्थों की टीकाएँ आत्मानुशासन भाषा टीका और पुरुषार्थ सिद्धियुपाय भाषा टीका है। प्राकृत ग्रन्थों में गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकांड, लब्धिसार-क्षपणासार और त्रिलोकसार हैं जिनकी भाषा-टीकाएँ उन्होंने लिखी हैं।

गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड लब्धिसार और क्षपणासार की भाषा टीकाएँ पंडित टोडरमलजी ने अलग-अलग बनाई थी परन्तु उक्त चारों टीकाओं को परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित एवं परस्पर एक का अध्ययन दूसरे के अध्ययन में सहायक जानकर उन्होंने उक्त चारों टीकाओं को मिलाकर एक कर दिया तथा उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका' रख दिया।

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका विवेचनात्मक व गद्य शैली में लिखी गई है। प्रारम्भ में इकहत्तर पृष्ठ की पीठिका है। आज नवीन शैली की सम्पादित ग्रन्थों की भूमिका का बड़ा महत्व माना जाता है। शैली के क्षेत्र में दो सौ बीस वर्ष पूर्व लिखी गई सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका आधुनिक भूमिका का आधा रूप होने पर भी उसमें प्रौढ़ता पाई जाती है, उसमें हल्कापन कहीं भी देखने को नहीं मिलता है। इसको पढ़ने से ग्रन्थ का पूरा हार्द खुल जाता है एवं इस ग्रन्थ के पढ़ने में आने वाली पाठक की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। हिन्दी आत्मकथा साहित्य में जो महत्व महाकवि बनारसी दास के अर्द्ध-कथानक को प्राप्त है, वही महत्व हिन्दी भूमिका साहित्य में सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका का है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पंडित टोडरमल जी का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस

ग्रन्थ का आधार कोई एक ग्रन्थ न होकर सम्पूर्ण जैन साहित्य है। यह सम्पूर्ण जैन साहित्य को अपने में समेट लेने का एक सार्थक प्रयत्न भर था, खेद है कि यह ग्रन्थराज पूर्ण न हो सका, अन्यथा यह कहने में संकोच नहीं होता कि यदि सम्पूर्ण जैन वाङ्मय कहीं एक जगह सरल, सुबोध और जनभाषा के रूप में देखना हो तो मोक्षमार्ग प्रकाशक को देख लीजिए। अपूर्ण होने पर भी यह अपनी पूर्णता के लिए प्रसिद्ध है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसके कई संस्करण निकल चुके हैं[६] एवं खड़ी बोली में इसके अनुवाद भी कई बार प्रकाशित हो चुके हैं।[७] यह उर्दू में भी छप चुका है।[८] मराठी और गुजराती में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।[९] अभी तक कुल मिलाकर इसकी ५१,२०० प्रतियां छप चुकी हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के दिगम्बर जैन मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों में इस ग्रन्थराज की हजारों हस्तलिखित प्रतियां पायी जाती हैं। समूचे समाज में यह स्वाध्याय और प्रवचन का लोकप्रिय ग्रन्थ है। आज भी पण्डित टोडरमलजी दिगम्बर जैन समाज में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले विद्वान हैं। मोक्षमार्ग प्रकाशक की मूल प्रति भी उपलब्ध है।[१०] एवं उसके फोटो प्रिन्ट करा लिए गए हैं, जो जयपुर,[११]

---

[६] (क) बाबू ज्ञानचन्दजी जैन, लाहौर (वि० सं० १९५४)
(ख) जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई (सन् १९११ ई०)
(ग) बाबू पन्नालाल जी चौधरी, वाराणसी (वी० नि० सं० २४५१)
(घ) अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, बम्बई (वी० नि० सं० २४६३)
(ङ) सस्ती ग्रन्थमाला, दिल्ली
(च) ,, ,, ,, (छ) ,, ,, ,, (ज) ,, ,, ,,।

[७] (क) अ० भा० दिगम्बर जैन संघ, मथुरा (वी० नि० सं० २००५)
(ख) श्री दिगम्बर स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (वि० सं० २०२३)
(ग) ,, ,, ,, ,, ,, ,, (वि० सं० २०२६)
(घ) ,, ,, ,, ,, ,, ,, (वि०सं०२०३०)।

[८] दाताराम चेरिटेबल ट्रस्ट, दरीबाकलां, दिल्ली (वि० सं० २०२७)।

[९] (क) श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़।
(ख) महावीर ब्रह्मचर्याश्रम, कारंजा।

[१०] श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, दीवान भदीचन्दजी, घी वालों का रास्ता, जयपुर।

[११] वही, जयपुर।

बम्बई,[१२] दिल्ली[१३] और सोनगढ़[१४] में सुरक्षित हैं। इस पर स्वतन्त्र प्रवचनात्मक व्याख्याएँ भी मिलती हैं।[१५]

यह ग्रन्थ विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखा गया है। प्रश्नोत्तरों द्वारा विषय को बहुत गहराई से स्पष्ट किया गया है। इसका प्रतिपाद्य एक गम्भीर विषय है, पर जिस विषय को उठाया गया है उसके सम्बन्ध में उठने वाली प्रत्येक शंका का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। प्रतिपादन शैली में मनोवैज्ञानिकता एवं मौलिकता पाई जाती है। प्रथम शंका के समाधान में द्वितीय शंका की उत्थानिका निहित रहती है। ग्रन्थ को पढ़ते समय पाठक को आगे पढ़ने की उत्सुकता बराबर बनी रहती है।

वाक्य रचना संक्षिप्त और विषय प्रतिपादन शैली तार्किक एवं गम्भीर है। व्यर्थ का विस्तार उसमें नहीं है। पर विस्तार के संकोच में कोई विषय अस्पष्ट नहीं रहा है। लेखक विषय का यथोचित विवेचन करता हुआ आगे बढ़ने के लिए सर्वत्र ही आतुर रहा है। जहाँ कहीं भी विषय का विस्तार हुआ है वहाँ उत्तरोत्तर नवीनता आती गई है। वह विषय विस्तार सांगोपांग विषय विवेचना की प्रेरणा से ही हुआ है। जिस विषय को उन्होंने छुआ उसमें 'क्यों' का प्रश्नवाचक समाप्त हो गया है। शैली ऐसी अद्भुत है कि एक अपरिचित विषय भी सहज हृदयंगम हो जाता है।

पण्डितजी का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत में निबद्ध आध्यात्मिक तत्वज्ञान को भाषा-गद्य के माध्यम से व्यक्त किया और तत्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी। यह नवीनता उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि में है।

टीकाकार होते हुए भी पण्डितजी ने गद्य शैली का निर्माण किया है।

---

[१२] श्री दिगम्बर जैन सीमंधर जिनालय, जवेरी बाजार, बम्बई।

[१३] श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, धर्मपुरा, देहली।

[१४] श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़।

[१५] आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा किए गए प्रवचन, मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें नाम से दो भागों में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ से हिन्दी व गुजराती भाषा में कई बार प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० गौतम ने उन्हें गद्य निर्माता स्वीकार किया है।[१६] उनकी शैली दृष्टान्तयुक्त प्रश्नोत्तरमयी तथा सुगम है। वे ऐसी शैली अपनाते हैं जो न तो एकदम शास्त्रीय है और न आध्यात्मिक सिद्धियों और चमत्कारों से बोझिल। उनकी इस शैली का सर्वोत्तम निर्वाह मोक्षमार्ग प्रकाशक में है। तत्कालीन स्थिति में गद्य को आध्यात्मिक चिन्तन का माध्यम बनाना बहुत सूझबूझ और श्रम का कार्य था। उनकी शैली में उनके चिन्तन का चरित्र और तर्क का स्वभाव स्पष्ट झलकता है। एक आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी गद्य-शैली में व्यक्तित्व का प्रक्षेप उनकी मौलिक विशेषता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पंडित टोडरमल न केवल टीकाकार थे बल्कि अध्यात्म के मौलिक विचारक भी थे। उनका यह चिन्तन समाज की तत्कालीन परिस्थितियों और बढ़ते हुये आध्यात्मिक शिथिलाचार के सन्दर्भ में एकदम सटीक है।

लोक-भाषा काव्यशैली में 'रामचरित मानस' लिखकर महाकवि तुलसीदास ने जो काम किया, वही काम उनके दो सौ वर्ष बाद गद्य में जिन अध्यात्म को लेकर पंडित टोडरमलजी ने किया।

जगत के सभी भौतिक द्वन्द्वों से दूर रहने वाले एवं निरन्तर आत्मसाधना व साहित्य साधनारत इस महामानव को जीवन की मध्य वय में ही साम्प्रदायिक विद्वेष का शिकार होकर जीवन से हाथ धोना पड़ा।

इनके व्यक्तित्व और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए लेखक के शोध प्रबन्ध पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व[१७] का अध्ययन करना चाहिए। इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

"तातैं बहुत कहा कहिए" जैसे रागादि मिटावने का श्रद्धान होय सो ही सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावने का जानना होय सो ही सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटे सो ही सम्यक् चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानने योग्य है"[१८]

---

[१६] हिन्दी गद्य का विकास : डा० प्रेम प्रकाश गौतम, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ० १८५ व १८८।

[१७] प्रकाशक : पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४ बापू नगर, जयपुर-४।

[१८] मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ-३१३।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इनमें नैसर्प निधि के द्वारा छावनी, गढ़, खान, द्रोणमुख, मण्डप, पत्तन आदि निर्मित होते हैं। पाण्डुक नामक निधि द्वारा मान-उन्मान और प्रमाण आदि का परिमाप और धान्य बीज आदि उत्पन्न होते हैं। पींगल नामक निधि के द्वारा नर-नारी, हस्ती-अश्व आदि के समस्त प्रकार की लक्षण विधि ज्ञात होती है। सर्वरत्नक निधि के द्वारा चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय और सात पंचेन्द्रिय रत्न उत्पन्न होते हैं। महापद्म नामक निधि के द्वारा सर्व प्रकार के शुद्ध और रंगीन वस्त्र उत्पन्न होते हैं। काल नामक निधि के द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकाल की कृषि आदि कर्म और अन्य शिल्पादि का ज्ञान होता है। महाकाल नामक निधि के द्वारा प्रवाल, चाँदी, सोना, मोती, लोहादिक की खानें उत्पन्न होती हैं। माणव नामक निधि से योद्धा, आयुध, कवच आदि सम्पत्ति युद्ध-नीति एवं दण्ड-नीति उत्पन्न होती है। नवम् शंख नामक महा-निधि द्वारा चार प्रकार के काव्यों की सिद्धि, नाट्य एवं नाटक की विधि एवं समस्त प्रकार के वाद्य उत्पन्न होते हैं। ये सभी गुण सम्पन्न नवनिधियाँ आकर बोलने लगीं, 'हम गंगा के मुहाने पर मगध नामक तीर्थ में अवस्थान करती हैं। आपके भाग्य से हम आपके निकट आयी हैं। आप अपनी इच्छानुसार हमारा व्यवहार करें और कराएँ। समुद्र क्षय हो सकता है। किन्तु हमारी शक्ति कभी क्षय नहीं होती।' ऐसा कहकर सभी निधियाँ आज्ञा पालक की तरह खड़ी हो गयीं।

तब निर्विकारी राजा ने पारणा कर नवनिधियों के लिए अष्टाह्निका उत्सव किया। सुषेण ने भी गंगा के दक्षिण प्रान्त को छोटे ग्राम की तरह लीला करते हुए जय कर लिया। पूर्वापर समुद्र को लीला करते हुए आक्रान्त करने वाले महाराज भरत जैसे द्वितीय वैताढ्य पर्वत हों ऐसे वहाँ बहुत दिनों तक रहे।

एक दिन समस्त भरत क्षेत्र के विजेता भरतपति के चक्र ने अयोध्या की ओर चलना प्रारम्भ कर दिया। महाराज भरत भी स्नान, वस्त्र-परिधान, बलिकर्म, प्रायश्चित और कौतुक मंगल कर इन्द्र की भाँति गजेन्द्र पर आरूढ़ हो

गए। मानों कल्पवृक्ष हों ऐसी नवनिधि से पूर्ण भण्डार युक्त, मानो सुनन्दा के चौदह स्वप्नों के पृथक-पृथक फल हों ऐसे चौदह रत्नों से परिवृत, राजान्यों की कुल लक्ष्मी से असूर्यम्पश्या बत्तीस हजार विवाहित पत्नीयुक्त और बत्तीस हजार देश की बत्तीस हजार अप्सरातुल्य विवाहित रमणियों से शोभित-सेवकों, से बत्तीसहजारआश्रित राजाओं द्वारा सेवित विन्ध्य पर्वत तुल्य चौरासी लक्ष हस्तियों से सुशोभित, मानों समस्त देशों से चुनकर लाए गए हों ऐसे चौरासी लक्ष अश्व, चौरासी लक्ष रथ और पृथ्वी आच्छादन कारी पैदल सैन्य से परिवृत चक्रवर्ती ने अयोध्या छोड़ने के साठ हजार वर्षों पश्चात् चक्रपथ का अनुसरण करते हुए पुनः अयोध्या की ओर प्रयाण किया। पथ अतिक्रान्तकारी चक्रवर्ती की सैन्य द्वारा उत्क्षिप्त धूल से मलिन पक्षीगण ऐसे लगते थे मानों वे मिट्टी द्वारा निर्मित हों। पृथ्वी के मध्य भाग में निवास करने वाले भुवनपति और व्यन्तर देव इस भय से भीत हो गए कि चक्रवर्ती के सैन्य भार से पृथ्वी कहीं विदीर्ण न हो जाए। प्रत्येक गोकुल में आयतनपना गोपांगनाओं द्वारा प्रदत्त मक्खन रूपी अर्घ्य को अमूल्य समझकर चक्री सन्मान सहित स्वीकार कर रहे थे। वन्य हस्तियों के कुम्भ स्थल से प्राप्त मुक्तादि उपहार ले लेकर किरातगण आ रहे थे। महाराज वे सब ग्रहण कर रहे थे। पर्वत पर के पर्वतराजों द्वारा लाए हुए रत्न और स्वर्णखान का स्वर्ण सार भी वे ग्रहण कर रहे थे। ग्राम-ग्राम में उत्कंठित बन्धुओं की तरह वृद्धगण उपहार लिए आ रहे थे, चक्री प्रसन्नभाव से वे सब ग्रहण कर उन्हें अनुगृहित कर रहे थे। वे खेत में प्रविष्टकारी गायों की तरह ग्राम में सर्वत्र विस्तृत सैनिकों को निज आज्ञा रूपी उग्र दण्ड से निवारित कर रहे थे। बन्दरों की तरह वृक्ष पर चढ़े हुए ग्राम्य बालकों को अपनी ओर सप्रसन्न नयनों से देखते हुए देखकर पिता की तरह उनका वात्सल्य दृष्टि से अवलोकन कर रहे थे। वे धन-धान्य पूर्ण और निरुपद्रव ग्राम्य सम्पत्ति को अपनी नीति रूपी लता के फल रूप देख रहे थे। वे नदियों को पंकिल, सरोवर को शुष्क एवं कुओं एवं वापियों को पाताल छिद्र की तरह शून्य करते हुए अग्रसर हो रहे थे। इस प्रकार अविनयी शत्रु को दण्ड देने वाले महाराज मलयानिल की तरह प्रजा पुंज को आनन्द देते हुए धीरे-धीरे अयोध्या के निकट पहुँचे। वहाँ उन्होंने छावनी डालने का आदेश दिया। वह छावनी जैसे अयोध्या के अतिथि रूप में आगत सहोदर-सी लग रही थी। तदुपरान्त राज शिरोमणि भरत ने मन ही मन अयोध्या का ध्यान कर निरूपद्रव की प्रतीति दिलाने वाला अष्टम तप किया। तप के पश्चात् पौषधशाला से निकलकर चक्रवर्ती ने अन्य राजाओं के साथ दिव्य भोजन से पारणा किया।

उधर अयोध्या में स्थान-स्थान पर दिगन्तों से आगत लक्ष्मी के हिंडोलों से ऊँचे-ऊँचे तोरण निर्मित होने लगे। तीर्थंकर के जन्म समय देवता जिस प्रकार सुगन्धित जल बरसाते हैं उसी प्रकार नगरवासी प्रत्येक पथ पर केशर जल की वर्षा करने लगे। मानों निधि स्वयं अनेक रूप धारण कर पूर्व ही आ गयी हो ऐसे मंच स्वर्ण स्तम्भों पर निर्मित होने लगे। उत्तर कुरु के पाँच सरोवरों के दोनों ओर अवस्थित दस स्वर्ण पर्वत जैसे शोभा पाते हैं उसी प्रकार पथ के दोनों ओर आमने-सामने निर्मित रत्नमय तोरण इन्द्रधनुष की शोभा को भी पराजित कर रहे थे। गन्धर्व सेना जिस प्रकार विमान में उपवेशित होती है उसी प्रकार गीत गाने वाली रमणियाँ, मृदंग और वीणा बजाने वाले गन्धर्वों के साथ उस मंच पर बैठने लगीं। उस मंच पर चन्द्रातप से लटकती हुई मुक्तामालाएँ लक्ष्मी के निवास गृह-सी कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने लगीं। जैसे प्रमोद प्राप्त नगर देवी का हास्य हो इस प्रकार चमर से, स्वर्गमण्डन कारी चित्र से, कौतुकागत नक्षत्र रूप दर्पण से, खेचरों के हस्तवस्त्रों की भाँति सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों से और लक्ष्मी देवी की मेखला के समान विचित्र मणिमालाओं से और उच्च निर्मित स्तम्भों से नगर-वासी दुकानों की शोभा वर्द्धित करने लगे। लोगों द्वारा विलम्बित घुँघरूयुक्त पताकाएँ सारस पक्षी की मधुर ध्वनि से गुंजरित शरद् ऋतु के आगमन की सूचना देने लगीं। व्यवसायीगण गृह और दुकानों में यक्ष कर्दम लेपन कर गृहांगन में मुक्ता के स्वस्तिक रचने लगे। जगह-जगह रक्षित अगुरु चन्दन के चूर्ण से भरे धूपदानों से निर्गत जो धुआँ ऊपर को ओर जा रहा था देख-कर लगता था मानों वे स्वर्ग को भी धूपित करना चाह रहे हैं।

ऐसी सुसज्जित नगरी में प्रवेश करने की इच्छा से पृथ्वी के इन्द्र भरत चक्रवर्ती शुभ मुहूर्त्त में मेघ के समान गर्जन करने वाले हस्ती पर आरूढ़ हुए। आकाश जिस प्रकार चन्द्रमण्डल से शोभा पाता है उसी प्रकार कर्पूर चूर्ण-से श्वेत छत्र से वे शोभित होने लगे। दोनों चँवर इस प्रकार डुलाए जा रहे थे मानों गंगा और सिन्धु भक्तिवश अपने शरीर को छोटाकर चँवर रूप में उनकी सेवा कर रही हों। स्फटिक पर्वतों की शिला का निष्कर्ष लेकर बुने हुए हों ऐसे उज्ज्वल, अति सूक्ष्म कोमल और घन-सन्नद्ध वस्त्रों से वे सुशोभित होने लगे। मानों रत्नप्रभा पृथ्वी ने प्रेमावेश में निजसार अर्पण कर दिया हो ऐसे विचित्र रत्नालंकारों से उनका सारा शरीर अलंकृत हो रहा था। फणों पर मणिधारक नागकुमार देवताओं द्वारा परिवृत नागराज की तरह माणिक्य-मय मुकुटधारी राजाओं द्वारा वे सेवित हो रहे थे। चारण देवता जैसे इन्द्र का

गुणगान करते हैं उसी प्रकार चारण और भाट जय-जय शब्दों से सबको आनन्दित करते हुए भरत के अद्भुत गुणों का कीर्तन कर रहे थे। ऐसा लगता था मानों मांगलिक वाद्यों के शब्दों से प्रतिध्वनियों के बहाने आकाश भी उनका मंगल-गान कर रहा हो। तेज में इन्द्र तुल्य और पराक्रम के आगार महाराज भरत ने रवाना होने की इच्छा से हस्ती को आगे बढ़ाया। अनेक दिनों पश्चात् आए अपने राजा के लिए ग्राम और नगरों से इतने लोग आये थे मानों वे स्वर्ग से उतर आए हों या धरती फटकर निकले हों। महाराज की समस्त सैन्य और उन्हें देखने के लिए समवेत जनता को देखकर लगा मानों पूरा मृत्युलोक ही एक जगह एकत्रित हो गया हो। उस समय चारों ओर केवल नरमुण्ड ही दिखाई दे रहे थे। तिल धरने की भी वहाँ जगह नहीं थी। कई हर्ष से उत्साहित होकर भाट की तरह महाराज भरत की स्तुति कर रहे थे, कई वस्त्रांचल से हवा कर रहे थे, मानों वस्त्रांचल ही उनका चँवर हो। कई युक्तकर ललाट पर रखकर सूर्य को जिस प्रकार नमस्कार किया जाता है उसी प्रकार नमस्कार कर रहे थे। कई माली की भाँति उन्हें पुष्प-फल अर्पण कर रहे थे, कई कुल देवता समझकर उन्हें वंदन कर रहे थे तो कई गोत्र वृद्ध की तरह उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे।

प्रजापति भरत ने चार द्वार विशिष्ट निज नगर के पूर्वद्वार से इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार भगवान ऋषभ देव समोसरण में प्रवेश करते हैं। शुभ लग्न के समय जिस प्रकार एक साथ महाघोष वाद्य बजते हैं उसी प्रकार नगर में निर्मित प्रत्येक मंच पर संगीत प्रारम्भ होने लगा। महाराज जैसे-जैसे अग्रसर हो रहे थे वैसे-वैसे राजपथ के दोनों पार्श्वस्थित अट्टालिकाओं से नर-नारीगण आनन्द से उपहार देने की तरह खिलों का वर्षण कर उनका स्वागत करने लगे। पुरजनों ने चारों ओर से पुष्प वर्षण कर हस्ती को चारों ओर से अच्छादित कर दिया। उससे हस्ती पुष्पमय रथ-सा प्रतीत होने लगा। उत्कंठित लोगों के अकुण्ठ उत्साह सहित चक्रवर्ती धीरे-धीरे राजपथ पर आगे बढ़ने लगे। हस्ती का भय न कर जन-समूह उनके निकट आने लगा और उन्हें फलादि उपहार देने लगा। कारण आनन्द ही बलवान होता है। भरत हाथी को अंकुश द्वारा विद्ध कर प्रत्येक मंच के निकट खड़े रखते थे। उस समय दोनों ओर अवस्थित मंच की अग्रवर्तिनी रूपसियाँ एक साथ कर्पूर द्वारा चक्रवर्ती की आरती उतारती थीं। इससे महाराज दोनों ओर चन्द्र सूर्य सह मेरुपर्वत से लग रहे थे। अक्षत की तरह मुक्ता भरे थाल ऊँचे कर चक्रवर्ती का स्वागत करने के लिए दुकानों के अग्रभाग में खड़े वणिक गण

दृष्टि के द्वारा उन्हें आलिंगन कर रहे थे। राजपथ के दोनों ओर की अट्टालिकाओं के द्वारदेश पर खड़ी कुलीन सुन्दरियों के मांगलिक महाराज अपनी बहिनों द्वारा कृत मांगलिकों की भाँति स्वीकार कर रहे थे। उन्हें देखने की इच्छा से भीड़ में पिसे लोगों को देखकर महाराज अपना अभयदान कारी हस्त उत्तोलित कर छड़ीदारों द्वारा उनकी रक्षा करवाते थे। इस प्रकार अनुक्रम से चलते हुए महाराज भरत ने पिता के सात मंजिलों वाले महल में प्रवेश किया।

उस राज-प्रासाद के सम्मुख प्रांगण के दोनों ओर दो हाथी बँधे थे। वे राजलक्ष्मी के क्रीड़ा पर्वत से लगते थे। सुवर्ण कलश-से उसके मुख्यद्वार इस प्रकार शोभा पा रहा था जैसे चक्रवाकों की पंक्तियों से नदी शोभा पाती है। आम्र पल्लवों से सुशोभित वह प्रासाद इस प्रकार सुशोभित था जैसे इन्द्र नीलमणि के कण्ठहार से ग्रीवा सुशोभित होती है। उस प्रासाद में कहीं मुक्ता के, कहीं कपूर चूर्ण के, कहीं चन्द्रकान्त मणि के मंगल स्वस्तिक रचित थे। कहीं चीनांशुक के, कहीं रेशम के, कहीं देवदूष्य वस्त्र की पताका श्रेणियों से वह सुशोभित था। उसके आँगन में कहीं कपूर जल की, कहीं पुष्प रस का तो कहीं हस्तियों का मदजल छिड़का हुआ था। उसके शिखर पर रक्षित कलश ऐसा लगता था मानों कलशों के बहाने सूर्य ही जैसे वहाँ आकर निवास कर रहा है। इस प्रकार सुसज्जित उस राजमहल के आँगन में निर्मित अग्रवेदी पर पैर रख छड़ीदारों के हाथों का सहारा लिए महाराज भरत हस्ती से नीचे उतरे। फिर जिस प्रकार प्रथम आचार्य की पूजा की जाती है उसी प्रकार अपने अंग रक्षक सोलह हजार देवताओं की पूजा कर उन्हें विदा किया। इस प्रकार बत्तीस हजार राजा, सेनापति, पुरोहित, गृहपति और वर्द्धकियों को विदा किया। हस्तियों को जिस प्रकार आलान स्तम्भ से बाँधने की आज्ञा दी जाती है उसी प्रकार तीन सौ त्रेसठ रसोइयों को अपने-अपने घर लौटने की आज्ञा दी। उत्सव के अन्त में अतिथियों की तरह श्रेष्ठियों को, नौ प्रकार के कारीगरों को, नव शायक को, दुर्गपालक और सार्थवाहों को विदा दी। फिर इन्द्राणी के साथ जैसे इन्द्र गमन करता है उसी प्रकार स्त्री-रत्न सुभद्रा, बत्तीस हजार राजकुल उत्पन्न रानियाँ और बत्तीस हजार देश के नेताओं की कन्याओं के साथ बत्तीस हजार पत्रयुक्त बत्तीस हजार अभिनय सह मणिमय शिलाओं की पंक्ति पर दृष्टि रख यक्षपति कुबेर जैसे कैलाश जाता है उसी प्रकार उत्सव सह महाराज भरत ने राजमहल में प्रवेश किया। वहाँ कुछ क्षण के लिए पूर्वाभिमुखी राज सिंहासन पर

बैठे, सत्कथा सुनी फिर स्नानागार में गए। हस्ती जैसे सरोवर में स्नान करता है उसी प्रकार स्नान कर परिवार सहित अनेकों रस युक्त आहार ग्रहण किए। फिर योगी जैसे योग में समय व्यतीत करता है उसी प्रकार उन्होंने नव रस के नाटक देखते हुए, मनोहर संगीत सुनते हुए कुछ काल व्यतीत किया।

एक दिन देवताओं और मनुष्यों ने आकर निवेदन किया—हे महाराज, आपने विद्याधरों सहित छः खण्ड पृथ्वी पर विजय प्राप्त की है अतः आज्ञा दीजिए इन्द्र के समान पराक्रमी आपका हम महाराज्याभिषेक करें। महाराज भरत के सम्मति देने पर देवताओं ने नगर के बाहर ईशान कोण में सुधर्मा सभा के एक खण्ड जैसा एक मण्डप निर्मित किया। वे द्रह नदी समुद्र और अन्य तीर्थों से जल औषधि और मिट्टी लाए।

महाराज ने पौषधशाला में जाकर अष्टम तप किया। कारण तपस्या द्वारा प्राप्त राज्य तपस्या द्वारा ही सुखमय होता है। अष्टम तप पूर्ण होने पर वे अन्तःपुर और परिवार सहित हस्ती पृष्ठ पर आरूढ़ होकर उस दिव्य मण्डप में गए। फिर अन्तःपुर और हजार नाटक सहित वे उत्तम प्रकार से निर्मित उस अभिषेक मण्डप में प्रविष्ट हुए। वहाँ वे सिंहयुक्त स्नानपीठ पर बैठे। देखकर लगा जैसे हस्तीने पर्वत शिखर पर आरोहण किया हो। इन्द्र से प्रीति के कारण ही मानो वे पूर्व दिशा की ओर मुखकर बैठे थे। थोड़े से हों इस प्रकार बत्तीस हजार राजा उत्तर दिशा की ओर सीढ़ी से स्नान पीठ पर आरोहण कर चक्रवर्ती से कुछ दूर जमीन पर भद्रासन पर बैठ गए। वे विनयी राजा इस प्रकार युक्त कर बैठे जैसे देवतागण इन्द्र के सम्मुख बैठते हैं। सेनापति, सह-सेनापति, बर्द्धकी, पुरोहित, श्रेष्ठी आदि दाहिनी ओर की सीढ़ियों से स्नान पीठ पर चढ़े और स्वयोग्य आसनों पर इस प्रकार करबद्ध होकर बैठ गए मानो वे चक्री से कुछ निवेदन करेंगे।

फिर आदिदेव का अभिषेक करने के लिए जिस प्रकार इन्द्र आए थे उसी प्रकार नरदेव भरत का अभिषेक करने के लिए इन्द्र के अभियोगिक देवगण आए। जल से पूर्ण होने के कारण मेघ से, मुख भाग में कमल रहने के कारण चक्रवाक पक्षी-से, भीतर से बाहर जल आने के समय शब्द होने के कारण वाद्य ध्वनि को अनुसरण करने वाली शब्दावली-से, स्वाभाविक रत्न कलशों से अभियोगिक देवगण महाराज भरत का अभिषेक करने लगे। तदुपरान्त स्वनेत्र हों ऐसे जलपूर्ण ३२ हजार राजाओं ने शुभ मुहूर्त में उनका अभिषेक किया और अपने ललाट पर कमल कलियों से हाथों को युक्त कर

'आपकी जय हो, आपकी जय हो' बोलकर चक्री को साधुवाद देने लगे। फिर श्रेष्ठी आदियों ने जल से उनका अभिषेक कर उसी जल के समान उज्ज्वल वाणी से उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात वे पवित्र लोमयुक्त कोमल गन्ध कषायी वस्त्रों से चक्री की देह को माणिक्य की भाँति पोंछने लगे। गेरू जिस प्रकार स्वर्ण को उज्ज्वल करती है उसी प्रकार महाराज की देह को उज्ज्वल करने के लिए गोशीर्ष चन्दन का लेपन करने लगे। देवों ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त ऋषभदेव के मुकुट को अभिषिक्त एवं राजाओं में अग्रणी चक्रवर्ती के मस्तक पर रखा। उनके दोनों कानों में रत्न-कुण्डल पहनाए। वे दोनों चन्द्रमा के निकटस्थ चित्रा और स्वाति नक्षत्र से लगने लगे। सूत्र में बिना पिरोया हुआ हार रूप में एक ही मुक्ता उत्पन्न हो गया हो ऐसी मुक्तामाला उनके गले में पहनायी। मानो समस्त अलंकारों के हार रूप राजा का युवराज हो ऐसा सुन्दर अर्द्धहार उनके वक्ष पर सुशोभित किया। उज्ज्वल और कान्ति-शोभित दो देवदूष्य वस्त्र राजा को पहनाए। उधर देखकर लगता मानो वह उज्ज्वल अभ्रक सम्पुट हो। एक सुन्दर पुष्पहार उनके कण्ठ में लटकाया जो लक्ष्मी के वक्षस्थल रूपी मन्दिर की अर्गला-सा लगता था। इस प्रकार कल्पवृक्ष-सा अमूल्य वस्त्र और माणिक्य के अलंकारों को धारण कर महाराज ने स्वर्ग-खण्ड से उस मण्डप को मण्डित किया। तदुपरान्त पुरुषाग्रणी एवं महान् बुद्धिमान महाराज ने छड़ीदारों द्वारा राज्य पुरुषों को बुलवाकर आदेश दिया—'हे अधिकारी पुरुष, आपलोग हस्ती पृष्ठ पर आरोहण कर समस्त नगर में घोषणा करें कि बारह वर्षों के लिए विनीता नगरी को भूमिकर, प्रवेश शुल्क, दण्ड, कुदण्ड और भय से मुक्त कर आनन्दमय किया जाता है।' अधिकारीगणों ने उसी मुहूर्त्त में वाद्यध्वनि कर सर्वत्र राजाज्ञा प्रचारित कर दी। कहा भी गया है कार्य सफल करने के लिए चक्रवर्ती का आदेश पन्द्रह संख्यक रत्न के समान है।

तत्पश्चात् महाराज सिंहासन से उठे। साथ ही साथ मानों उनके प्रतिबिम्ब ही हों अन्य भी उठकर खड़े हो गए। जैसे पर्वत शिखर से उतरते हों उसी प्रकार भरतेश्वर स्नानपीठ से उसी पथ से उतरे जिस पथ से चढ़े थे। तदुपरान्त मानो उनका असह्य प्रताप ही हो ऐसे हाथी पर चढ़कर चक्री अपने प्रासाद को लौट गए। वहाँ जाकर उत्तम जल से स्नान कर अष्टम तप का पारना किया। इसी प्रकार बारह वर्ष अभिषेकोत्सव में व्यतीत हो गए। तब चक्रवर्ती ने स्नान पूजा प्रायश्चित और कौतुक मंगल कर बाहरी सभा स्थान में आकर सोलह हजार आत्मरक्षक देवताओं का सत्कार कर विदा

किया। फिर विमानवासी इन्द्र की तरह महाराज स्व-प्रासाद में अवस्थान करते हुए विषय सुख भोग करने लगे।

महाराज की आयुधशाला में चक्र खड्ग छत्र और दण्ड-से चार एकेन्द्रिय रत्न थे। रोहिणाचल के माणिक्य की भाँति उनके लक्ष्मीगृह में कांकिणी रत्न, चर्म रत्न, मणिरत्न और नव निधियाँ थीं। अपने नगर में उत्पन्न सेनापति, गृहपति, पुरोहित और वर्द्धकि ये चार नर रत्न थे। वैताढ्य पर्वत के मूल देश में उत्पन्न गजरत्न और अश्व रत्न थे। विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न एक स्त्री रत्न था। नेत्रों को आनन्दप्रदानकारी आकृति में वे चन्द्रमा से सुशोभित होते और दुःसह प्रतापे से सूर्य के समान प्रतिभासित होते। पुरुष-रूप में उत्पन्न समुद्र हों वैसे उनका अन्तस्थल दुरधिगम्य था। कुबेर की भाँति उन्हें मनुष्यों का प्रभुत्व प्राप्त हुआ था। जम्बूद्वीप जिस प्रकार गंगा सिन्धु आदि नदियों से सुशोभित होता है उसी प्रकार वे पूर्वोक्त चौदह रत्नों से सुशोभित होते थे। विहार करते समय जिस प्रकार ऋषभ देव के पैरों तले नौ स्वर्ण कमल रहते थे उसी प्रकार उनके पैरों तले नौ निधियाँ रहती थीं। बहुमूल्य क्रीत आत्म-रक्षकों की भाँति सोलह हजार परिपार्श्विक देवताओं द्वारा वे परिवृत रहते थे। बत्तीस हजार राजकन्याओं की तरह बत्तीस हजार राजा परिपूर्ण भक्ति से उनकी उपासना करते। बत्तीस हजार नाटकों की तरह बत्तीस हजार देशों की बत्तीस हजार कन्याओं के साथ वे रमण करते थे। संसार में श्रेष्ठ राजा तीन सौ त्रेसठ रसोइयों से उसी प्रकार शोभित थे जैसे तीन सौ त्रेसठ दिन से वत्सर शोभित होता है। अठारह लिपि प्रवर्त्तक भगवान ऋषभ की तरह अठारह श्रेणियाँ उपश्रेणियों द्वारा पृथ्वी पर उन्होंने लोक व्यवहार प्रचलित किया था। वे चौरासी लक्ष हस्ती, चौरासी लक्ष घोड़े, चौरासी लक्ष रथ और छियानवे कोटि ग्राम और इतनी ही संख्या के पदातिकों से शोभित होते थे। वे बत्तीस हजार देश और बत्तीस हजार वृहद् नगरों के अधीश्वर थे। निन्यान्वे हजार द्रोणमुख और अड़तालीस हजार दुर्ग के वे अधिपति थे। वे आडम्बर युक्त श्री सम्पन्न चौबीस हजार खर्बट, चौबीस हजार मण्डप और बीस हजार आकरों के स्वामी थे। सोलह हजार खेटक पर वे शासन करते थे। वे प्रभु चौदह हजार संवाह और छप्पन हजार द्वीपों के एवं उनचालीस कुराज्यों के नायक थे। इस प्रकार वे समस्त भरत क्षेत्र के शासनकर्त्ता अधीश्वर थे।

अयोध्या नगरी में निवास करते समय अखण्ड अधिकारी भरत महाराज

अभिषेक उत्सव समाप्त होने पर एक दिन जब निज आत्मियों को याद करने लगे तब अधिकारी पुरुषों ने साठ हजार वर्षों से जिन्होंने महाराज को नहीं देखा ऐसे उनके दर्शनों को उत्सुक समस्त आत्मियों को उनके सम्मुख उपस्थित किया। उनमें सबसे प्रथम बाहुबली की सहजात, गुणों में सुन्दर सुन्दरी को उपस्थित किया गया। वह सुन्दरी ग्रीष्माक्रान्त नदी की तरह दुर्बल लग रही थी। हिम सम्पर्क से जैसे कमलिनी मलिन हो जाती है उसी प्रकार वह मलिन हो गयी थी। हिम ऋतु के चन्द्रमा की कला की तरह उसका रूप लावण्य नष्ट हो गया था व शुष्कपत्र कदली की तरह उसके कपोल पीले और कृश दिख रहे थे।

सुन्दरी की यह अवस्था देखकर महाराज क्रोध से भरकर अपने अधिकारी पुरुषों को बोले—"क्या हमारे घर पर पर्याप्त खाद्य नहीं है? क्या लवण समुद्र का लवण शेष हो गया या पुष्टिकर खाद्य प्रस्तुत कारक सूपकार नहीं है या वे स्वेच्छाचारी और कार्यों में शिथिल हो गए हैं? द्राक्षा एवं खर्जुरादि शुष्क फल भी क्या हमारे यहाँ नहीं हैं? सुवर्ण पर्वतों पर क्या सोना नहीं है? उद्यान के वृक्ष क्या अब फल नहीं देते? नन्दन वन के वृक्षों में क्या अब फल नहीं लगते? घट से स्तन विशिष्ट गायें क्या अब दूध नहीं देतीं? कामधेनु के स्तन-प्रवाह क्या शुष्क हो गए हैं अथवा समस्त वस्तुओं के रहते हुए भी रोगाक्रान्त होने के कारण सुन्दरी ने आहार परित्याग कर दिया? इसके शरीर में क्या सौन्दर्य नाशकारी रोग हुआ है? या उसे दूर करने में सक्षम वैद्यगण अब कहने भर को रह गए हैं? हमारे घर की औषधियाँ यदि शेष भी हो गयी तो क्या हिमाद्रि पर्वत भी औषधियों से रहित हो गया? हे अधिकारी-गण, दरिद्र कन्या की तरह सुन्दरी को दुर्बल देखकर मेरे मन में अत्यन्त कष्ट हो रहा है। तुम लोगों ने शत्रु की तरह मुझे प्रतारित किया है।"

भरतपति की ऐसी क्रोध भरी बातें सुनकर अधिकारीगण उन्हें प्रणाम कर बोले—"महाराज, स्वर्गपति की तरह आपके घर में सभी वस्तुएँ वर्तमान हैं। किन्तु जिस दिन आप दिग्विजय के लिए निकले उसी दिन से सुन्दरी आयंबिल तपस्या कर रही हैं। केवल प्राण धारण के लिए सामान्य-सा आहार लेती हैं। आपने इन्हें दीक्षा लेने से रोक दिया था इसी से ये भाव दीक्षा लेकर समय व्यतीत कर रही हैं।"

यह सुनकर कल्याणकारी महाराज भरत सुन्दरी से बोले—"कल्याणी, तुम क्या दीक्षा लेना चाहती हो?" सुन्दरी ने प्रत्युत्तर दिया—"हाँ महाराज।"

सुनते ही महाराज भरत बोले—"हाय, प्रमाद व सरलता के कारण मैं आज पर्यन्त इसके व्रत में विघ्नकारी बना रहा। यह कन्या तो अपने पिता की तरह है और उनका पुत्र होकर भी मैं सर्वदा विषय में आसक्त और राज्य में अतृप्त रहा। आयु जलतरंग-सी नाशवान है। फिर भी विषयासक्त व्यक्ति यह समझना नहीं चाहता। अन्धकार में चलने के समय जिस प्रकार क्षण-स्थायी विद्युत के आलोक में पथ दिखाई पड़ता है उसी प्रकार नश्वर आयु में साधु व्यक्ति की तरह मोक्ष साधना करना ही उचित है। मांस, विष्ठा, मूत्र, मल, स्वेद और रोग पूर्ण इस देह को सज्जित करना घर के नालों को सज्जित करना है। हे भगिनी, तुम धन्य हो जो इस शरीर में मोक्ष रूप फल प्रदान-कारी व्रत ग्रहण करना चाहती हो। जो चतुर होते हैं वे लवण समुद्र से भी रत्न आहरण करते हैं।" प्रसन्नचित्त महाराज ने ऐसा कहकर सुन्दरी को दीक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया। तपोकृशा सुन्दरी यह सुनकर आनन्दित हुई मानों पुष्ट हो गयी हों ऐसी उत्साह पूर्ण हो गयी।

[क्रमशः

वधमान जीवन कोश—१म खंड

सम्पादक—मोहनलाल बांठिया एवं श्रीचन्द चोरड़िया।
प्रकाशक—जैन दर्शन समिति, कलकत्ता, पृष्ठ ५८४।

प्रस्तुत ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें भगवान महावीर के जीवन चरित्र से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का संकलन किया गया है। भगवान महावीर का जीवन चरित्र विभिन्न लेखकों द्वारा विभिन्न भाषाओं एवं विभिन्न विधाओं में प्राप्त होता है। किन्तु कोश की विधा में उनके जीवन चरित्र को स्पष्ट करने वाला यह सर्व प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ है। कोश का निर्माण कितना श्रम साध्य होता है, यह वही व्यक्ति जान सकता है जो इस प्रकार के कार्य से सम्पृक्त रहा हो। इसे वही व्यक्ति कर सकता है जो दृढ़ अध्यावसाय और निष्ठा का धनी हो। स्व० श्री मोहनलाल बांठिया की कार्य के प्रति निष्ठा उल्लेखनीय और असंदिग्ध थी। श्री श्रीचन्द चोरड़िया में भी उसी प्रकार की श्रमनिष्ठा और कार्यशीलता परिलक्षित होती है। यही कारण है कि बांठिया जी के निधन के बावजूद भी कोश-निर्माण का कार्य अपनी गति से चल रहा है।

भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित विकीर्ण तथ्यों को प्रस्तुत ग्रन्थ में एकत्रित किया गया है। महावीर के जीवन का विशिष्ट अध्ययन एवं शोध करने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों का इससे बड़ा उपकार हुआ है। एक ही स्थान पर समग्र सामग्री उपलब्ध होने से अध्येताओं को बहुत बड़ी सुविधा मिली है। इसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों प्रकार की मान्यताओं का दिग्दर्शण प्राप्त होता है। कुछ तथ्य तो ऐसे हैं जो इससे पूर्व ध्यान में नहीं आए थे। दिगम्बर मान्यता के अनुसार महावीर अविवाहित थे। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार वे विवाहित थे। उनकी एक पत्नी थी जिसका नाम यशोदा था किन्तु शीलांकाचार्य के छप्पन महापुरुष चरियं का सन्दर्भ उद्धृत करते हुए उनके अनेक पत्नियों का उल्लेख किया गया है जो एक अबहुश्रुत तथ्य है। इस सम्बन्ध में अनुसंधान की अपेक्षा है।

परिश्रम के अनुरूप सम्पादन भी परिष्कृत होता तो ग्रन्थ की गरिमा और अधिक बढ़ जाती। अनुवाद की भाषा में प्रांजलता का अभाव है। तथ्यों को कालानुक्रम से प्रस्तुत किया जाता तो गवेषणा की दृष्टि से सुगमता होती। मुद्रण की भूलें भी अखरने जैसी हैं। आगामी संस्करण में इनपर ध्यान दिया जाए तो बात उत्तम होगा।

—मुनि गुलाब चन्द्र 'निर्मोही"

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश || अगस्त १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'रत्नाकर पच्चीसी' (हिन्दी पद्यानुवाद : भँवरलाल नाहटा), 'कुकड़ेश्वर श्री पार्श्वनाथ', '१२वीं शताब्दी के ऐतिहासिक जैनाचार्य दादा श्री जिनदत्त सुरीश्वर' (अतुल जैन) ।

जिनवाणी || अगस्त १९८३

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'सत्य : महत्व और स्वरूप' (पी० एम० चौरड़िया), 'भारतीय शाकाहार [३]' (डा० ताराचन्द गंगवाल) ।

जैन जगत || अगस्त १९८३

इस अंक में है 'संयम और समाधि' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) ।

तीर्थंकर || अगस्त १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'प्रेक्षा : उतरना गहरे, खूब गहरे' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'पुण्य श्लोक पण्डित जी' (मृदुला मेहता : अनु० काशीनाथ त्रिवेदी), 'अर्द्ध-कथानक' (बनारसीदास : अनु० राजकुमारी बेगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : खत के रूप में चिन्तन' (गणेश ललवानी) ।

श्रमणोपासक || अगस्त १९८३

इस अंक में है 'भगवान महावीर की प्रजातांत्रिक दृष्टि' (राजकुमार जैन), 'समतावादी जैन दर्शन और नारी' (डा० पुष्पलता जैन), 'क्या राजनीति में अहिंसा संभव है ?' (सिद्धराज ढढ्ढा) ।

Vol. VII No. 5 : Titthayara : September 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY
and
C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.
22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700 001